Gyanvividha, Vol.-2; Issue-2 (Apr.-June) 2025 : PP-156-160

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-2 (Apr.-June) 2025
Page No.- 156-160
DOI- 10.71037/gyanvividha.v2i2.24
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Hanuman
Gujarat University, Ahmadabad.

Corresponding Author :

Hanuman
Gujarat University, Ahmadabad.

हिन्दी नाटक में पारिवारिक विघटन और व्यक्ति-संकट का रूपांकन

सारांश : यह शोधपत्र स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में परिवार के विघटन और व्यक्ति के आंतरिक संकट के परस्पर संबंध का साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का केंद्र मोहन राकेश के आधे-अधूरे और आषाढ़ का एक दिन तथा मन्नू भंडारी के बिना दीवारों के घर जैसे नाटक हैं, जिनमें घर केवल निवास-स्थल नहीं, बल्कि तनाव, असुरक्षा, असंतोष, लैंगिक असमानता, अधूरी आकांक्षाओं और आत्म-विक्षेप का सक्रिय रंग-परिदृश्य बन जाता है। शोध का मूल निष्कर्ष यह है कि हिन्दी नाटक में पारिवारिक विघटन किसी बाहरी सामाजिक घटना भर का चित्रण नहीं है; वह आधुनिक मनुष्य के भीतर की टूटन, अकेलेपन, विस्थापन और असफल आत्म-खोज का नाट्य-रूप है। इन नाटकों में स्त्री पात्र घर की केन्द्रीय धुरी बनते हुए भी सबसे अधिक संकटग्रस्त दिखाई देती है, जबकि पुरुष पात्र प्रायः विफल आत्मगौरव, संशय, पलायन और आंतरिक दुर्बलता के वाहक बनते हैं। इस प्रकार परिवार और व्यक्ति दोनों की त्रासदी एक-दूसरे की व्याख्या करती हुई सामने आती है।

मुख्य शब्द : हिन्दी नाटक, पारिवारिक विघटन, व्यक्ति-संकट, स्वातंत्र्योत्तर संवेदना, मध्यवर्ग, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, नाट्यभाषा, स्त्री-अस्मिता, अंतर्द्वन्द्व ।

1. परिचय : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक ने ऐतिहासिक, पौराणिक और राष्ट्रवादी आख्यानों से आगे बढ़कर आधुनिक मनुष्य के दैनिक जीवन को अपनी विषयवस्तु बनाया। यही वह चरण है जहाँ परिवार, दाम्पत्य, आर्थिक असंतुलन, यौन-संदेह, आत्महीनता, महत्वाकांक्षा और अकेलापन नाट्य-संरचना के प्रमुख तत्व बनते हैं। नेमिचन्द्र जैन ने आधुनिक हिन्दी नाटक को बदलती रंग-चेतना और जीवन-जटिलता से जोड़ा, जबकि दशरथ ओझा और बच्चन सिंह ने हिन्दी नाटक के विकासक्रम में आधुनिक संवेदना के इस मोड़ को विशेष महत्त्व दिया है

(जैन, 1978; ओझा, 2017; बच्चन सिंह, 2008). रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार स्वाधीनता-उत्तर साहित्य में संवेदना का स्वर अधिक विखंडित, अधिक आत्मसंवादी और अधिक संशयग्रस्त हुआ; हिन्दी नाटक ने इसी संवेदना को घर और संबंधों के भीतर उभरती दरारों में पहचाना (चतुर्वेदी, 2018). इस दृष्टि से आधे-अधूरे, बिना दीवारों के घर और आषाढ़ का एक दिन केवल प्रतिनिधि नाटक नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय जीवन के कठिन मानवीय दस्तावेज़ हैं।

इस विषय की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है कि हिन्दी नाटक में पारिवारिक विघटन का अर्थ केवल पति-पत्नी के बीच तनाव नहीं है। यह विघटन जीवन-मूल्यों के अवसाद, श्रम-विभाजन की असमानता, मध्यवर्गीय अभिलाषाओं की असफलता, लैंगिक स्वायत्तता के भय, और 'पूर्ण जीवन' की असंभव खोज से निर्मित होता है। आधे-अधूरे के पुस्तक-विवरण में उसे "पारिवारिक विघटन की गाथा" और "मानवीय संतोष के अधूरेपन का रेखांकन" कहा गया है, जबकि बिना दीवारों के घर अपने रूपक से ही बताता है कि आधुनिक गृहस्थी की दीवारें नैतिक और भावनात्मक रूप से पिघल रही हैं (राकेश, 2021; भंडारी, 2024). गिरीश रस्तोगी, गोविन्द चातक और नेमिचन्द्र जैन की आलोचनाएँ भी इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि आधुनिक हिन्दी नाटक का मूल संकट बाहर से अधिक भीतर का संकट है; परिवार वहाँ अक्सर व्यक्ति की असफल आत्म-रचना का दृश्य रूप बन जाता है (रस्तोगी, 1990; चातक, 2003; जैन 331).

2. सैद्धान्तिक ढाँचा और शोध-विधि : इस शोध का सैद्धान्तिक आधार साहित्यिक-सामाजिक और रंग-समीक्षात्मक दोनों है। बच्चन सिंह की उक्ति "नाटक एक श्रव्य-दृश्य काव्य है" (बच्चन सिंह, 2008) इस अध्ययन के लिए विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि पारिवारिक विघटन और व्यक्ति-संकट केवल कथ्य में नहीं, संवाद, मौन, देह-भाषा, रंग-संकेत, घरेलू वस्तुओं, मंच-व्यवस्था और दर्शनीय तनाव में प्रकट होते हैं। गिरीश रस्तोगी की यह मान्यता कि नाटक का मूल स्वभाव रंगमंचीय है, अध्ययन को केवल पाठ-केन्द्रित न रखकर प्रदर्शन-सम्भावना की ओर भी विस्तृत करती है (रस्तोगी, 2023; रस्तोगी, 2017). सिद्धनाथ कुमार के नाट्यालोचनात्मक संकेत और नेमिचन्द्र जैन की रंग-दृष्टि से यह समझ विकसित होती है कि आधुनिक नाटक में व्यक्ति का संकट अक्सर भाषा के टूटे प्रवाह, अधूरे वाक्य, कटे संवाद, संकोच, तिरस्कार और असमाप्त संबंधों से व्यक्त होता है (कुमार, 2004; जैन, 1978).

शोध-विधि के रूप में निकट-पाठ, तुलनात्मक पाठ-विश्लेषण और आलोचनात्मक पुनर्पाठ का सहारा लिया गया है। प्राथमिक पाठों में आधे-अधूरे, बिना दीवारों के घर, आषाढ़ का एक दिन और संदर्भ-विस्तार के लिए लहरों के राजहंस को सम्मिलित किया गया है; सहायक स्रोतों में नेमिचन्द्र जैन, गिरीश रस्तोगी, गोविन्द चातक, दशरथ ओझा, सिद्धनाथ कुमार, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि की आलोचनात्मक कृतियाँ तथा संबंधित शोध-लेखों का उपयोग किया गया है (राकेश, 2021; राकेश, 2017; भंडारी, 2024; राकेश, 2021; रस्तोगी, 1990). इस पद्धति का उद्देश्य पाठों में उपस्थित सामाजिक सच्चाइयों को यांत्रिक समाजशास्त्र में बदलना नहीं, बल्कि यह देखना है कि साहित्य किस प्रकार टूटते हुए परिवार को मनुष्य की भीतरी विखंडन-प्रक्रिया के साथ जोड़ता है।

3. चर्चा एवं विश्लेषण : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में घर की अवधारणा निर्णायक रूप से बदलती है। यह घर अब सामूहिक आश्रय का पवित्र क्षेत्र नहीं रह जाता; वह आरोप, प्रतियोगिता, आर्थिक दबाव, लैंगिक शक्ति-संघर्ष और आत्महीनता का बंद परिसर बन जाता है। आधे-अधूरे के विवरण में यह रचना "स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव और तनाव" के साथ "पारिवारिक विघटन की गाथा" कही गई है; बिना दीवारों के घर के परिचय में घर की दीवारों का

"लगभग 'न-हुई' सी" हो जाना आधुनिक पारिवारिक संरचना की आंतरिक क्षीणता का सटीक रूपक बनकर सामने आता है (राकेश, 2021; भंडारी, 2024). इसीलिए आधुनिक हिन्दी नाटक में परिवार का प्रश्न निजी होकर भी ऐतिहासिक है; वह मध्यवर्गीय सामाजिक संरचना, कामकाजी स्त्री की उपस्थिति, पुरुष-असुरक्षा और नैतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या से पैदा होता है (रस्तोगी, 1990; जैन, 1978). परिवार यहाँ टूटता इसलिए नहीं कि लोग साथ नहीं रहते; वह इसलिए टूटता है कि साथ रहते हुए भी एक-दूसरे तक पहुँच नहीं पाते।

आधे-अधूरे में यह संकट सबसे अधिक सघन रूप में प्रकट होता है। नाटक के प्रारम्भ में सावित्री का परिचय ही उसकी दुविधा को खोल देता है। "उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष" (राकेश 11)। यह पंक्ति केवल रूप-वर्णन नहीं; यह उस स्त्री की मानसिक संरचना का प्रारम्भिक संकेत है जो गृहिणी और उपार्जक, पत्नी और अभिलाषी व्यक्तित्व, जिम्मेदारी और अपूर्णता सभी के बीच फँसी हुई है। सावित्री के भीतर 'पूर्ण' जीवन की आकांक्षा है, पर उसके सामने महेन्द्रनाथ जैसा निष्क्रिय, पराजित और आर्थिक रूप से निर्भर पति है। संवाद "हो तो सकते हो, पर घर के अंदर ही" (राकेश, 2021) महेन्द्रनाथ की पुरुष-अस्मिता को निर्णायक चोट देता है। यह वाक्य घरेलू झुँझलाहट का वाक्य भर नहीं; यह उस आधुनिक स्थिति का सूचक है जिसमें घर पुरुष के लिए आश्रय नहीं, अपमान का स्थान बन जाता है। ओम शिवपुरी ने ठीक ही इसे "समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक हिंदी नाटक" कहा, क्योंकि इसमें मध्यवर्गीय घर का तनाव केवल बोला नहीं गया, जिया गया है (जैन 331).

इस नाटक की शक्ति यह है कि विघटन केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं रहता; वह पूरी पारिवारिक संरचना में रिसता है। राजीव कुमार प्रसाद का निष्कर्ष "विघटनशील परिवार के सभी सदस्य आधे-अधूरे हैं" (प्रसाद 361) नाटक की केन्द्रीय सच्चाई को पकड़ता है। अशोक की निष्क्रियता, बिन्नी का घर से भाग जाना, किन्नी का असमय विद्रोह ये सब अलग-अलग घटनाएँ नहीं, बल्कि एक ही पारिवारिक वातावरण के मानसिक परिणाम हैं (प्रसाद 361; राकेश, 2021). इस नाटक की रंग-युक्ति एक ही अभिनेता द्वारा अनेक पुरुष-पात्रों का निर्वाह भी अर्थपूर्ण है; इससे सावित्री की तलाश के सभी पुरुष एक दूसरे के भिन्न रूप होते हुए भी अन्ततः एक-सी अधूरापन भरी संरचना में बदल जाते हैं। यहाँ परिवार टूटता है क्योंकि हर व्यक्ति दूसरे में अपनी कमी की पूर्ति चाहता है; परिणामतः कोई भी किसी का सहारा नहीं बन पाता। इसी तरह आधे-अधूरे पारिवारिक विघटन को आधुनिक मनुष्य की मूल अस्तित्वगत अपूर्णता से जोड़ देता है।

बिना दीवारों के घर में मन्नू भंडारी ने दाम्पत्य तनाव को अधिक प्रत्यक्ष सामाजिक धरातल पर रूपायित किया है। यहाँ शोभा शिक्षित, कर्मठ और आत्मनिर्भर बनने की दिशा में अग्रसर स्त्री है, जबकि अजित अपनी पारंपरिक पुरुष-केन्द्रित भूमिका के विघटन से असुरक्षित हो उठता है। शोभा का कथन "मैं अब एक मिनट के लिए भी इस घर में नहीं रहना चाहती" दाम्पत्य संबंध के टूटते बिंदु को उद्घाटित करता है; और उसका यह कहना कि "तीन महीने से यह घर मेरे ही बूते पर चल रहा था" (भंडारी 35) आर्थिक यथार्थ को भावनात्मक संघर्ष से जोड़ देता है। यहाँ घर का संकट स्पष्ट है: जो स्त्री घर को संभाल रही है, वही सबसे अधिक संदेह और अपमान की शिकार है। इसीलिए मन्नू भंडारी के पुस्तक-विवरण में कहा गया कि आधुनिक घर की दीवारें अन्ततः "भहरा जाती हैं" और पुरुष उन "पिघलती दीवारों" के सामने असहाय हो उठता है (भंडारी, 2024). इस नाटक में स्त्री-संघर्ष किसी घोषणापरक नारीवाद से नहीं, घरेलू संवाद की मार्मिकता से व्यक्त हुआ है।

दीपक रामा तुपे ने ठीक रेखांकित किया है कि इस नाटक में अजित-शोभा के दाम्पत्य के बीच 'तीसरे आदमी' की उपस्थिति संदेह, कुंठा और विवाद

को प्रखर बनाती है; परिणामतः "घर की दीवारों का टूटना" केवल रूपक नहीं, बल्कि नैतिक-संरचनात्मक विघटन का दृश्य बन जाता है (तुपे 109-10). शोभा की प्रगति अजित को प्रेरित नहीं करती; वह उसे अपने अधिकार-संकट की तरह ग्रहण करता है। यहीं मन्नू भंडारी की सामाजिक दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म हो जाती है। स्त्री की शिक्षा और स्वावलम्बन आधुनिकता का संकेत हैं, पर पुरुष-मानस अभी उस आधुनिकता को आत्मसात नहीं कर पाया है। इसलिए बिना दीवारों के घर में पारिवारिक विघटन का मूल कारण केवल वैवाहिक विवाद नहीं, बल्कि बदलती सामाजिक भूमिकाओं को स्वीकार न कर पाने वाली पुरुष-केंद्रित मानसिकता है (भंडारी, 2024; तुपे 110). इस नाटक का 'घर' वस्तुतः आधुनिक दाम्पत्य की परीक्षा-स्थली है, जहाँ प्रेम से अधिक अहं, सुरक्षा से अधिक शंका, और सम्बन्ध से अधिक स्वामित्व उपस्थित है।

यदि आधे-अधूरे और बिना दीवारों के घर पारिवारिक विघटन की सामाजिक संरचना को सामने लाते हैं, तो आषाढ़ का एक दिन व्यक्ति-संकट की अधिक भीतरी, अधिक कलात्मक और अधिक करुण परिणति को उद्घाटित करता है। कालिदास का कथन "मैं धीरे-धीरे खंडित होता गया... मैं सर्वथा टूट गया हूँ" (राकेश, 2017) आधुनिक हिन्दी नाटक में व्यक्ति-विघटन की सबसे मार्मिक स्वीकृतियों में है। सत्ता, प्रतिष्ठा, रचना, प्रेम और स्मृति के बीच फँसा यह पात्र अपने मूल परिवेश से कटते ही भीतर से विखंडित हो उठता है। नेमिचन्द्र जैन ने इस नाटक को आधुनिक मनुष्य की विवशता और अंतर्द्वन्द्व का नाटक कहा है; उनके अनुसार कालिदास का संघर्ष केवल प्रेम और महत्वाकांक्षा का नहीं, बल्कि उस रचनात्मक व्यक्तित्व का संघर्ष है जो अपने ही अर्जित वैभव में असुखी हो जाता है (जैन 737-44). यहाँ पारिवारिक विघटन दाम्पत्य-बिखराव की तरह प्रत्यक्ष नहीं है, पर मनुष्य के संबंधों के टूटने, लौट न पाने और अपने निकटतम आत्मीय को भी खो देने की त्रासदी में वह पूरी गहराई से विद्यमान है।

इसी रेखा को लहरों के राजहंस आगे बढ़ाता है। नेमिचन्द्र जैन ने नंद के प्रसंग में लिखा है कि संवेदनशील व्यक्ति के लिए "अपनी मुक्ति का मार्ग" स्वयं रचना होगा; न बुद्ध का रास्ता पर्याप्त है, न सुंदरी का आकर्षक संसार (जैन 750). इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिन्दी नाटक में व्यक्ति-संकट केवल नैतिक विकल्प का संकट नहीं, बल्कि अस्मिता का संकट है। संबंध, परिवार, प्रेम, वैभव ये सब अब स्थिर आश्रय नहीं रहे। व्यक्ति को अपना अर्थ स्वयं खोजना है; पर यह खोज जितनी स्वतंत्र है, उतनी ही त्रासद भी। मोहन राकेश के नाट्य-जगत में यह बेचैनी सर्वत्र है। महेन्द्रनाथ, सावित्री, शोभा, अजित, कालिदास, मल्लिका, नंद सभी अपने-अपने रूप में कुछ खो चुके हैं और कुछ पा भी नहीं सके हैं (राकेश, 2021; जैन 750-51). इसीलिए हिन्दी नाटक में व्यक्ति-संकट और पारिवारिक विघटन दो अलग विषय नहीं, बल्कि एक ही आधुनिक अनुभव के दो रूप हैं।

4. परिणाम और निष्कर्ष : परिणाम के स्तर पर यह अध्ययन तीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने लाता है। पहला, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में पारिवारिक विघटन का सबसे विश्वसनीय रूप आर्थिक असंतुलन, लैंगिक भूमिका-परिवर्तन और संवादहीनता के संयुक्त प्रभाव से बनता है; आधे-अधूरे और बिना दीवारों के घर इसके प्रखर उदाहरण हैं (राकेश, 2021; भंडारी, 2024). दूसरा, व्यक्ति-संकट इन नाटकों में बाहरी विफलता से अधिक आंतरिक विखंडन के रूप में व्यक्त हुआ है; व्यक्ति सम्मान, प्रेम, स्वतंत्रता और अर्थ इन सबकी खोज करता है, पर किसी स्थिर केंद्र तक नहीं पहुँचता (राकेश, 2017; रस्तोगी, 2017). तीसरा, नारी-पात्र इन नाटकों में केवल पीड़िता नहीं हैं; वे आधुनिकता की संवाहक भी हैं। सावित्री और शोभा दोनों पारिवारिक संरचना की धुरी हैं, पर उनके द्वारा ही घर की पुरानी नैतिकता की सीमाएँ उजागर होती हैं (भंडारी 35; राकेश 11). इस प्रकार हिन्दी नाटक का आधुनिक परिवार एक संघर्षशील नैतिक प्रयोगशाला बनकर उभरता है, जहाँ व्यक्ति और संस्था दोनों अपनी-

अपनी परीक्षा से गुजरते हैं।

निष्कर्षत : हिन्दी नाटक में पारिवारिक विघटन का रूपांकन वस्तुतः आधुनिक मनुष्य की आध्यात्मिक, भावात्मक और सामाजिक अस्थिरता का रूपांकन है। घर टूटता है क्योंकि व्यक्ति भीतर से आश्वस्त नहीं है; व्यक्ति संकटग्रस्त है क्योंकि संबंधों की पुरानी संरचनाएँ विश्वसनीय नहीं रहीं। मोहन राकेश और मन्नू भंडारी ने इस सत्य को किसी ठोस उपदेश से नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के संवादों, असहज मौनों, टूटती आकांक्षाओं और वापसी-असमर्थ पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। यही कारण है कि ये नाटक अपने समय की सीमा लाँघकर आज भी उतने ही समकालीन लगते हैं। आधुनिक हिन्दी नाटक की यह उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है कि उसने परिवार को नैतिक आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि जीवित मनुष्यों की असफलताओं, इच्छाओं, आघातों और संभावनाओं के क्षेत्र के रूप में देखा। इस दृष्टि से पारिवारिक विघटन कोई 'अंत' नहीं, बल्कि आधुनिक आत्म-बोध की एक कठिन, किंतु आवश्यक, नाट्य-प्रक्रिया है (ओझा, 2017; जैन, 1978; रस्तोगी, 1990; चातक, 2003)।

संदर्भ सूची :

1. बच्चन सिंह. हिन्दी नाटक. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008.
2. भंडारी, मन्नू. बिना दीवारों के घर. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2024.
3. चातक, गोविन्द. आधुनिक हिन्दी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003.
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास. लोकभारती प्रकाशन, 2018.
5. गाडेकर, जयराम, संपादक. स्वातंत्र्योत्तर मंचीय हिंदी नाटक. भारतीय प्रकाशन गृह, 2020.
6. जैन, नेमिचन्द्र. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच. दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, 1978.
7. जैन, नेमिचन्द्र, संपादक. मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक. राजपाल एंड सन्स, 2006.
8. कुमार, प्रदीप. "'आधे-अधूरे' नाटक का रंग-शिल्प." साहित्य संहिता, खंड 1, अंक 8, सितम्बर 2015.
9. कुमार, सिद्धनाथ. नाटकालोचन के सिद्धांत. वाणी प्रकाशन, 2004.
10. ओझा, दशरथ. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास. राजपाल एंड सन्स, 2017.
11. प्रसाद, राजीव कुमार. "आधे-अधूरे: आधुनिक-युगीन सांस्कृतिक-पारिवारिक विघटन का जीवन्त दस्तावेज!" इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, खंड 5, अंक 9, 2019, पृ. 359-362.
12. राकेश, मोहन. आधे-अधूरे. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2021.
13. राकेश, मोहन. आषाढ़ का एक दिन. राजपाल एंड सन्स, 2017.
14. राकेश, मोहन. लहरों के राजहंस. राजकमल प्रकाशन, 2021.
15. रस्तोगी, गिरीश. मोहन राकेश और उनके नाटक. लोकभारती प्रकाशन, 2023.
16. रस्तोगी, गिरीश. समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना. हरियाणा साहित्य अकादमी, 1990.
17. रस्तोगी, गिरीश. हिन्दी नाटक और रंगमंच : नई दिशाएँ, नए प्रश्न. अभिव्यक्ति प्रकाशन, 1999.
18. रस्तोगी, गिरीश. हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष. लोकभारती प्रकाशन, 2017.
19. तुपे, दीपक रामा. "'बिना दीवारों के घर' की रंगमंचीयता." स्वातंत्र्योत्तर मंचीय हिंदी नाटक, संपादक डॉ. जयराम गाडेकर, भारतीय प्रकाशन गृह, 2020, पृ. 108-113.

•